मूलाचार में प्रतिक्रमण एवं कायोत्सर्ग

संकलन : डॉ. श्वेता जैन

वट्टकेरकृत मूलाचार ग्रंथ शौरसेनी भाषा में रचित दिगम्बर/यापनीय कृति है। इसके षडावश्यकाधिकार में लगभग १९० गाथाएँ हैं। यहाँ प्रतिक्रमण एवं कायोत्सर्ग आवश्यक से सम्बद्ध कतिपय गाथाएँ हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत हैं। प्रारम्भिक गाथाओं पर वसुनन्दिकृत आचारवृत्ति का हिन्दी अर्थ भी दिया गया है। -सम्पादक

दव्वे खेत्ते काले भावे य कयावराहसोहणयं।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचकायेण पडिक्कमणं।।

-मूलाचार, मूलगुणाधिकार, गाथा २६

गाथार्थ- निन्दा और गर्हापूर्वक मन-वचन-काय के द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के विषय में किये गये अपराधों का शोधन करना प्रतिक्रमण है।

आचारवृत्ति (वसुनन्दिकृत)- आहार, शरीर आदि द्रव्य के विषय में; वसतिका (ठहरने का स्थान), शयन, आसन, गमन-आगमन मार्ग इत्यादि क्षेत्र के विषय में; पूर्वाह्न-अपराह्न, दिवस, रात्रि, पक्ष, मास, संवत्सर तथा भूत-भविष्यत्-वर्तमान आदि काल के विषय में और परिणाम- मन के व्यापार रूप भाव के विषय में जो अपराध हो जाता है अर्थात् इन द्रव्य आदि विषयों में या इन द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावों के द्वारा व्रतों में जो दोष उत्पन्न हो जाते हैं उनका निन्दा-गर्हापूर्वक निराकरण करना। अपने दोषों को प्रकट करना निन्दा है और आचार्य आदि गुरुओं के पास आलोचना-पूर्वक दोषों का कथन गर्हा है। निन्दा में आत्मसाक्षीपूर्वक ही दोष कहे जाते हैं तथा गर्हा में गुरु आदि पर के समक्ष दोषों को प्रकाशित किया जाता है- यही इन दोनों में अन्तर है। इस तरह शुभ मन-वचन-काय की क्रियाओं के द्वारा, अपने द्वारा किये गये अशुभ योग से प्रतिनिवृत्त होना- वापस अपने व्रतों में आ जाना अर्थात् अशुभ परिणामपूर्वक किये गये दोषों का परित्याग करना इसका नाम प्रतिक्रमण है।

तात्पर्य यह है कि निन्दा और गर्हा से युक्त होकर साधु मन-वचन-काय की क्रिया के द्वारा द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव के विषय में अथवा इन द्रव्यादिक के द्वारा किये गये व्रत विषयक अपराधों का जो शोधन करते हैं, उसका नाम प्रतिक्रमण है।

पढमं सव्वदिचारं बिदियं तिविहं भवे पडिक्कमणं।
पाणस्स परिच्चयणं जावज्जीवायमुत्तमट्ठं च।।

-मूलाचार, संक्षेपप्रत्याख्यानाधिकार, गाथा १२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ- आराधना में तीन ही प्रतिक्रमण होते हैं। पहला सर्वातिचार प्रतिक्रमण है। दूसरा त्रिविध आहारत्याग प्रतिक्रमण है। यावज्जीवन पानक आहार का त्यागना उत्तमार्थ नाम का तीसरा प्रतिक्रमण होता है।

आचारवृत्ति (वसुनन्दिकृत)- क्रम को बतलाने के लिए यह गाथा है। दीक्षाकाल का आश्रय लेकर आज तक जो भी दोष हुए हैं, उन्हें सर्वातिचार कहा गया है। संलेखना ग्रहण करके यह क्षपक पहले सर्वातिचार प्रतिक्रमण करता है। पुनः तीन प्रकार के आहार का त्याग करना द्वितीय प्रतिक्रमण है और अन्त में यावज्जीवन मोक्ष के लिए पानक वस्तु का भी त्याग कर देना उत्तमार्थ नामक तृतीय प्रतिक्रमण कहलाता है।

अर्थात् प्रथम सर्वातिचार प्रतिक्रमण, द्वितीय त्रिविधाहार का प्रतिक्रमण और तृतीय यावज्जीवन पानक के त्याग रूप उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है।

मिच्छत्तपडिक्कमणं तह चेव असंजमे पडिक्कमणं।
कसाएसु पडिक्कमणं जोगेसु य अप्पसत्थेसु।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६१९

गाथार्थ- मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, असंयम का प्रतिक्रमण, कषायों का प्रतिक्रमण और अप्रशस्त योगों का प्रतिक्रमण, यह भाव प्रतिक्रमण है।

भावेण अणुवजुत्तो दव्वीभूदो पडिक्कमदि जो दु।
जस्सट्ठं पडिकमदे तं पुण अट्ठं ण साधेदि।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६२६

गाथार्थ- जो भाव से उपयुक्त न होता हुआ द्रव्यरूप प्रतिक्रमण करता है, वह जिस प्रयोजन से प्रतिक्रमण करता है उस प्रयोजन को सिद्ध नहीं कर पाता है।

भावेण संपजुत्तो जदत्थजोगो य जंपदे सुत्तं।
सो कम्मणिज्जराएविउलाए वट्टदे साधू।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६२७

गाथार्थ- भाव से युक्त होता हुआ जिस प्रयोजन के लिए सूत्र को पढ़ता है, वह साधु विपुल कर्मनिर्जरा में प्रवृत्त होता है।

मुक्खट्ठी जिदणिद्दो सुत्तत्थविसारदो करणसुद्धो।
आदबलविरियजुत्तो काउस्सग्गी विसुद्धप्पा।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६५३

गाथार्थ- मोक्ष का इच्छुक, निद्राविजयी, सूत्र और उसके अर्थ में प्रवीण, क्रिया से शुद्ध, आत्मा के बल और वीर्य से युक्त, विशुद्ध आत्मा कायोत्सर्ग को करने वाला होता है।

संवच्छरमुक्कस्सं भिण्णमुहुत्तं जहण्णयं होदि।
सेसा काओसग्गा होंति अणेगेसु ठाणेसु।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ- एक वर्ष तक का कायोत्सर्ग उत्कृष्ट है और अन्तर्मुहूर्त का जघन्य होता है। शेष कायोत्सर्ग अनेक स्थानों में होते हैं।

अट्ठसदं देवसियं कल्लद्धं पक्खियं च तिण्णिसया।
उस्सासा कायव्वा णियमंते अप्पमत्तेण।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६५९

गाथार्थ- अप्रमत्त साधु को दैवसिक के एक सौ आठ, रात्रिक के इससे आधे- चौवन और पाक्षिक के तीन सौ उच्छ्वास करना चाहिए।

चादुम्मासे चउरो सदाइं संवत्थरे य पंचसदा।
काओसग्गुस्सासा पंचसु ठाणेसु णादव्वा।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६६०

गाथार्थ- चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में चार सौ और सांवत्सरिक में पाँच सौ, इस तरह इन पाँच स्थानों में कायोत्सर्ग के उच्छ्वास जानना चाहिए।

पाणिवह मुसावाए अदत्त मेहुण परिग्गहे चेय।
अट्ठसदं उस्सासा काओसग्गह्मि कादव्वा।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६६१

गाथार्थ- हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह- इन दोषों के हो जाने पर कायोत्सर्ग में एक सौ आठ उच्छ्वास करना चाहिए।

भत्ते पाणे गामंतरे य अरहंतसमणसेज्जासु।
उच्चारे पस्सवणे पणवीसं होंति उस्सासा।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६६२

गाथार्थ- भोजन-पान में, ग्रामान्तर गमन में, अर्हंत के कल्याणक स्थान व मुनियों की निषद्या वन्दना में और मल-मूत्र विसर्जन में पच्चीस उच्छ्वास होते हैं।

उद्देसे णिद्देसे सज्झाए वंदणे य पणिधाणे।
सत्तावीसुस्सासा काओसग्गह्मि कादव्वा।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६६३

गाथार्थ- ग्रन्थ के प्रारम्भ में, समाप्ति में, स्वाध्याय में, वन्दना में और अशुभ परिणाम के होने पर कायोत्सर्ग करने में सत्ताईस उच्छ्वासपूर्वक कायोत्सर्ग करना चाहिए।

काओसग्गं इरियावहादिचारस्स मोक्खमग्गम्मि।
वोसट्ठचत्तदेहा करंति दुक्खक्खयट्ठाए।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६६४

गाथार्थ- मोक्षमार्ग में स्थित होकर ईर्यापथ के अतिचार शोधन हेतु शरीर से ममत्व छोड़कर साधु दुःखों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षय के लिए कायोत्सर्ग करते हैं।

णिक्कूडं सविसेसं बलाणरूवं वयाणुरूवं च।
काओसग्गं धीरा करंति दुक्खक्खयट्ठाए।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६७३

गाथार्थ- धीर मुनि मायाचार रहित, विशेष सहित, बल के अनुरूप और उम्र के अनुरूप कायोत्सर्ग को दुःखों के क्षय हेतु करते हैं।

त्यागो देहममत्वस्य तनूत्सृतिरुदाहता।
उपविष्टोपविष्टादिविभेदेन चतुर्विधा।।
आर्त्तरौद्रद्वयं यस्यामुपविष्टेन चिन्त्यते।
उपविष्टोपविष्टाख्या कथ्यते सा तनूत्सृतिः।।
धर्मशुक्लद्वयं यत्रोपविष्टेन विधीयते।
तामुपविष्टोत्थि तांकां निगदंति महाधियः।।
आर्त्तरौद्रद्वयं यस्यामुत्थितेन विधीयते।
तामुपविष्टोत्थितांकां निगदंति महाधियः।।
धर्मशुक्लद्वयं यस्यामुत्थितेन विधीयते।
उत्थितोत्थितनाम्ना तामाभाषन्ते विपश्चितः।।

-मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा ६७५, की आचारवृत्ति में उद्धृत श्लोक

श्लोकार्थ- देह से ममत्व का त्याग कायोत्सर्ग कहलाता है। उपविष्टोपविष्ट आदि के भेद से वह चार प्रकार का हो जाता है।।१।।

जिस कायोत्सर्ग में बैठे हुए मुनि आर्त्त और रौद्र इन दो ध्यानों का चिन्तन करते हैं वह उपविष्टोपविष्ट कायोत्सर्ग कहलाता है।।२।।

जिस कायोत्सर्ग में बैठे हुए मुनि धर्म और शुक्ल ध्यान का चिन्तन करते हैं बुद्धिमान् लोग उसको उपविष्टोत्थित कहते हैं।।३।।

जिस कायोत्सर्ग में खड़े हुए साधु आर्त्त-रौद्र का चिन्तन करते हैं उसको उत्थितोपविष्ट कहते हैं।।४।।

जिस कायोत्सर्ग में खड़े होकर मुनि धर्म-ध्यान या शुक्ल ध्यान का चिन्तन करते हैं, विद्वान् लोग उसको उत्थितोत्थित कायोत्सर्ग कहते हैं।।५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org